तुलसी–दर्शन

श्रीश्रीमाँ सर्वाणी

प्रात:काल। तुलसीदास ने प्रात:कृत्यादि संपन्न कर छात्रों के सम्मुख आसन पर विराजकर दिन का पाठ आरम्भ किया, उन्होंने पूछा, "कल के पाठ से संबंधित विषय में कोई सन्देह हो तो, कहो?"; प्रथम छात्र बोला, "प्रभु आपने बताया कि भगवान रामचन्द्र सारे जीवों के हृदय में विराजते हैं, परन्तु सभी मानवों में उस परमात्मा के प्रकाश का विकास क्यों लक्षित नहीं किया जाता?" तुलसीदास–

"सबहि घटमें हरि बसें, ज्यों गिरिसुत में ज्योति।
ज्ञान–गुरू चकमक बिना कैसे प्रकट होति।' –

–वत्स! सारे जीवों में भगवान् आत्मारूप में विराजते हैं यह सत्य है, लेकिन ज्ञान के बिना वह प्रकाश नहीं होता। जिस प्रकार सभी पत्थरों में अग्नि है परन्तु लौह के आघात के बिना वह प्रकाश दिखाई नहीं देता; ठीक उसी तरह बिना सद्‌गुरू के उपदेश रूपी चकमक के मानव हृदय में प्रत्यक्ष आत्मज्योति का प्रकाश परिलक्षित होना असम्भव है। अतएव, सद्‌गुरू के उपदेशानुसार साधन–भजन करने पर ही भगवान का साक्षात् कृपापात्र बन सकते हो। छात्र–"प्रभो! आप ही तो हमारे सद्‌गुरू हैं; उपदेश दीजिये कि किस प्रकार भगवान रामचन्द्र का भजन करें?"

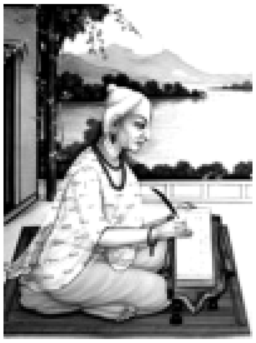

श्रीतुलसीदासजी

तुलसीदास–"तुम जैसा राम पर, तुमसे तैसा राम।
दाहिने जावत दाहिने जाये, वामे जावत वाम।।'–

–वत्स्! गीता में भगवान भी यही बात कहते हैं कि तुम उसको जिस भाव से पुकारोगे, वह तुम्हें उसी भाव में दर्शन देंगे। अनुकूल भाव से भजन करोगे तो, वे अनुकूल होंगे, प्रतिकूल भाव से भजन करोगे तो वे प्रतिकूल होंगे। अतएव संयमित चित्त से अनुकूल भाव में एकनिष्ट होकर भजन करो, तभी तुम्हारी कामना सिद्ध होगी।

छात्र–"यदि हम अति संयमित एवं सर्वान्त:करण भाव से भगवान के चरणकमलो में आत्मसमर्पण करें तो क्या वह हमपर दयावान होंगे?" तुलसीदास – हाँ वत्स्! "जो जाके शरण लियें, सो राखे ताको लाज। उलटा जल मछली चले, बहि जाए गजराज।।" – देखो, जो जिसकी शरण ग्रहण करता है वह उसके मान की रक्षा भी निश्चित करता है। जिस तरह जल के शरणागत होकर मछली अनायास ही भीषण तरंगो को भी पार कर लेती है; वह कितनी छोटी है किन्तु विशाल हाथी भीषण बलशाली होने के उपरांत भी वैसा नहीं कर पाता जो एक छोटी मछली कर देती है यह जानते हो?

छात्र – "यह तो जानता हूँ; अर्थात् भगवान के शरणागत होना अनिवार्य है नहीं तो कुछ भी नहीं होगा?"

तुलसीदास–"हाँ वत्स्! प्रभु जो मुझ शरणागत के प्रतिपालक हैं, उनको आत्मसमर्पण किये बिना क्या उनकी दया का पात्र बना जा सकता है? वह जो दीन–जन–वल्लभ।–

'निज दासन पर प्रभु करत कृपा अति भूरी।
भक्त कृपावत्सल हरि जानत है करि शुरि।।'–

–भक्तवत्सल भगवान अपने शरणागत जन के प्रति अतिशय कृपा करते हैं; वह जो भक्तवत्सल एवं भक्ताधीन हैं यह पंडित मात्र ही जानते हैं।" इस तरह तुलसीदासजी अपने शिष्यों को सम्यक चरित्र निर्माण हेतु आध्यात्मिक पथ की शिक्षा प्रदान करते थे। संत तुलसीदासजी द्वारा रचित दोहे मनुष्य को सत्पथ, सत्कर्म, सत्संग में उपनीत होने वाले कर्मो को करने की शिक्षा प्रदान करते हैं। एकबार तुलसीदासजी अपने भक्त को दीक्षा–दान कर 'राम' नाम की महिमा के सम्बन्ध में कहा–इस नाम की तुलना नहीं, मरणशील जीव इस नाम की जपमाला कर अमर होता है, पाप उसको कभी आश्रय नहीं कर सकता और उसके अनेक जन्मों का संचित पाप मन–प्राण को एक कर जप करने मात्र से ही क्षय हो जाते हैं। इस राम–नाम का महात्म्य स्पष्टाक्षर में वर्णित हुआ है –

'राशब्दोच्चारणेनैव वहिनिर्याति पातकं।
पुनरागमनन्चेत् स्यान्मकारोहस्तु कवाटकम्।।'–

अर्थात् – 'राम' शब्द का आद्यक्षर 'र' उच्चारण करने से जो मुख व्यादन करना पड़ता है उससे जीव देह के समस्त पाप विनष्ट हो जाते है। पाप पुनर्वार आने के उपक्रम करने से 'म' कार रूप द्वार में वाक्‌रूद्ध हो जाता है, इस कारण पाप अन्तर में और प्रविष्ट नहीं कर सकता। वत्स्! कलिकलुष नाश करने हेतु प्राणाराम 'राम' नाम के तुल्य और कुछ भी नहीं है।–

'राम नाम मणिदीप धरु, जीव देहरि द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरो जो चाहसी उजियार।।'–

–देखो, घर के केन्द्र स्थल पर प्रदीप रखने से जिस प्रकार अंदर–बाहर का अंधकार विनष्ट होते हुए आलोकित होता है, इसी तरह देह का द्वार सदृश जिह्वा पर रामनाम की वर्त्तिका जलाकर रखने से वाह्यान्तर का घोर अज्ञानांधकार नष्ट होकर ज्ञानालोक से देह प्रांगण आलोकित होता है।" सन्त तुलसीदासकृत रामायण में है–

"प्रभु सेवक ही न व्यापे अविद्या,
प्रभु प्रेरित तेहीं व्यापे विद्या।

ताते नाशन होई दास कर,
भेद भक्ति बाड़े विहंगवर।।"–

अर्थात्–हे विहंगवर! यथार्थ सेवा परायण भक्त कभी भी अविद्या आछन्न नहीं हो सकता, भगवान दया करके जो ज्ञान-दान करते हैं वह सर्वदा उसके मन में दीपशिखा की तरह प्रज्वलित रहता है, इसलिए उसके किसी भी कर्म में त्रुटि नहीं होती। अर्थात्, वह केवल संसार प्रपंच में मग्न नहीं रहता बल्कि भगवान में चित्त दृढ़ रखने में समर्थ होता है।

संत तुलसीदासजी निर्गुण व सगुण दोनों उपासना में सिद्ध थे। लेकिन उन्होनें सगुण साधना को सर्वोच्च स्थान दिया है। उनके मतानुसार सगुण साधना में सिद्ध साधक भगवान की साक्षात् योगमाया से अवगत होता है। इसलिए भगवत्लीला के कारण भगवान किसी भी रूप में साधक के समक्ष आविर्भूत क्यों न हो, सगुण साधना में सिद्धयोगी उनको पहचानने में गलती नहीं करेगा। अतएव, तुलसीदासजी अपनी निज उपलब्धि को भाषा में व्यक्त करते हौं–

"निर्गुण रूप सुलभ अति, सगुण जाने कोई।
सगुण अगम नाना चरित, सुनि मुनि मन भ्रम होई।।"–

–निर्गुण ब्रह्म के स्वरूप की उपलब्धि करना अति सहज है, कारण उनका एक शाश्वत अभिन्न स्वरूप है। यद्यपि, सगुण ब्रह्म का तत्व निर्णय करना किसी के लिये भी असाध्य है कारण, वह कब कौन सा स्वरूप धारण करेंगे यह निर्धारण कब कौन कर सका है? इस पक्ष में मुनिगणों का भी जब मतिभ्रम होता है, तो अन्य किसी की बात ही क्या!

"सगुण उपासकगण सुख पाहि,
निर्गुण में तलफत दिन जाहि।
महाकष्ट निर्गुण भजि नाहि,
केवल करमी यत पछताहि।।
जो पुनि सगुण भक्ति नहीं करहि,
केवल ब्रह्मस्वरूप को भजहि।
वाको होति कलेश सदाहि,
तुष कुटि कोउ चावल पाहि।।"–

यथा–निर्गुण ब्रह्म की उपासना करना कष्टप्रद है; सगुण ब्रह्म की उपासना में ही साधक परम सुख लाभ करते हैं। जिस प्रकार तुष को कुटने पर वह तंडुल प्राप्त नहीं कर सकता, उसी तरह सगुण को छोड़ निर्गुण में जो मग्न रहता है उसका कोई फल नहीं होता, अतएव सगुण उपासना ही मनोरम और सुखप्रद जानो।

"सगुण ध्यान रुचि सरस, नही निर्गुण मनते दूरि।
तुलसी सुमिरहु राम को नाम संजीवन मुरि।।"–

अर्थात्–सगुणरूप में भगवान का ध्यान करने से उनके प्रति तुम्हारी सरस रुचि होगी एवं निर्गुण भाव से ध्यान करने में कभी भी विमुख न होना। इसलिए तुलसीदासजी कहते हैं, मृत्युंजय राम-नाम इसी रूप में स्मरण करना ही एकमात्र कर्तव्य है। सगुण ब्रह्म की जय-ध्वजा फहराते हुये श्रीरामचन्द्रजी की अपार महिमा कीर्तन के अन्त में, सन्त तुलसीदासजी कहते हैं–

"अगुण ही सगुण ही नाहि कछु भेदा,
गावत मुनि पुराण बुध वेदा।
अगुण अरूप अलख अज जोई,
भकत प्रेम बस सगुण सो होई।।"

अर्थात्–निराकार और साकार ब्रह्म में कोई भेद नहीं है, निराकार ब्रह्म ही भक्त के कातर क्रन्दन से साकार रूप धारण करके भक्त का क्लेश नाश कर उसको सुख प्रदान करते हैं। अतएव "भजु मन राम चरण दिन राति।"

हिन्दी अनुवाद–श्रीमोहित शुक्ल।

महापरिक्रमा

श्रीश्रीमाँ सर्वाणी

नवीन सन्यासी दण्डी स्वामी सच्चिदानन्द अपने परमाराध्य श्रीश्रीगुरु बाबा की आज्ञा शिरोधार्य कर समग्र भारत परिक्रमा के लिए निकले। सुदीर्घकाल (प्रथम १८ वर्ष) हिमालय पर्वत की गुफा के मध्य कठोर तपस्या में कालातिपात करने के पश्चात् हठ्योग में पूर्ण सिद्धावस्था प्राप्त कर परिव्राजन के लिए जाने के पूर्व व्यासपीठ के प्राण पुरुष महागुरु श्रीनांगाबाबा ने एक दिन उनसे कहा – "बेटा, आज तुम परमहंस बन गये हो, अब तुम्हारा नाम 'सच्चिदानन्द' है।" यह आशीर्वाद देकर नांगाबाबा ने उनको शक्तिशाली त्रिशुल दण्ड हाथ में देकर समग्र भारत परिक्रमा के लिए यात्रा करवायी। मात्र १४ वर्ष की उम्र में स्कूल फाइनल परीक्षा देकर फेल होने के भय से सच्चिदानन्द ने गृहत्याग किया। सन् १९५० की बात है, हरिद्वार में एक साधु के सान्निध्य में आश्रय मिल गया। यहीं पर अलौकिक रुप से उनको परम पूज्य श्रीनांगाबाबा के दर्शन का लाभ मिला। हरिद्वार से ही नांगाबाबा उनको अपने साथ लेकर 'व्यासपीठ', हिमालय के गिरि कन्दरों के एक गोपन महान तीर्थ स्थान पर अपने आश्रम ले गये। उसी समय से उनके पवित्र जीवन की धारा परिवर्तित होने लगी। तपोरत किशोर सच्चिदानन्द हिमालय की निभृत गुफा में रहकर सोचते कि बचपन में अनेक बार रात्रि को उनकी मातृदेवी उनको उन्मुक्त आकाश के नीचे खड़ा करके उज्ज्वल नक्षत्रों को दिखाकर कहती – "अगर साधु बनो तो उस उज्ज्वल तारे की तरह बनना। मानो तुम्हारी ज्योति सुनील आकाश में अक्षय होकर रहे।" माँ के शब्द